IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

तैत्तिरीयोपनिषद् में अन्नादि द्वारा आतिथ्य विचार का विश्लेषणात्मक अध्ययन

[1]डॉ0 सरस्वती कुमारी

[1]सहायक प्राध्यापिका

[1]संस्कृत विभाग

[1]ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा

सारांश : जिस भाव से अतिथि को भोजन समत प्राप्त होगा। क्योंकि जो जैसा बोता है वैसा ही वह काटता है। यह विधि का विधान है। जो उक्त तथ्य को भलीभाति समझकर आत्मसात कर लेता है वह निश्चय हो अतिथि की सेना उत्तमप्रकार से करता है। अतिथि सत्कार सेना व्रत भारतीय संस्कृति का परम कल्याणकारी व्रत है जिसके अनुपालन से स्वर्ग लोक तो क्या विराट विराटेश्वर पुराण पुरुषोत्तम भगवान के अद्वितीय परम धाम को प्राप्त करना भी संभव है। महाराज रन्तिदेव ने अतिथि सेवा के द्वारा परमपद् का लाभ पाया था। शास्त्रों में वर्णित है। मातृ देवो भव! पितृ देवो भव! अतिथि देवो भव! आचार्य देवो भव! अतिथि भगवान का स्वरूप है। इसीलिए कहा भी गया है– ना जाने किस भेष में मिल जाए भगवान! मानव मात्र को अपने जीवन में इस अतिथि सेवा व्रत का अवश्य ही पालन करना चाहिए। द्वार पर आए हुए प्रत्येक जीव की अन्न–जल–पत्र पुष्पादि से सेवा करना प्राणी मात्र का कर्तव्य है।

अपने घर पर आये किसी भी अतिथि को प्रतिकूल उत्तर न दें। एक व्रत है। इसलिए अतिथि सत्कार के लिये जिस किसी भी प्रकार से बहुत–सा अन्न प्राप्त करना चाहिए। क्योंकि सद् गृहस्थ आये हुये अतिथि को ष्भोजन तैयार हैंश यों कहते है। यदि एक अतिथि को मुख्य वृत्ति अर्थात् श्रद्धा, प्रेम और सत्कारपूर्वक यह तैयार किया हुआ भोजन देता है। नोनिश्चय ही इस दाता को अधिक आदर सत्कार के साथ ही अन्न प्राप्त होता है। यदि यह अतिथि को मध्यम श्रेणी की श्रद्धा और प्रेम से यह तैयार किया हुआ भोजन देता हैं तो निःसंदेह इस दाता को मध्यम श्रद्धा एवं प्रेम से ही अन्न की प्राप्ति होती है। और यदि यह अतिथि को निकृष्ट श्रद्धा एवं सत्कार से यह तैयार किया हुआ भोजन देता है तो अवश्य ही इस दाता को निकृष्ट श्रद्धा आदि से अन्न मिलता है। जो इस प्रकार इस रहस्य को जानता है। वह अतिथि के साथ बहत उत्तम व्यवहार करता है।

इस अंश में अतिथि सेवा का महत्व और फल बताया गया है। इस संदर्भमें ऋषि उपदेश देते हैं कि श्घर में आये हुये अतिथि का कभी तिरस्कार नहीं करना चाहिए। इस व्रत का नियम से पालन करें। अतः केवल अपना तथा कुटुम्ब का पोषण करने के लिये ही नहीं, अपितु अतिथियों के लिये भी □ न्यायोचित उपाय से अधिक से अधिक अन्न का उपार्जन करें, जिससे सर्वथा – अतिथि सेवा में तत्पर रहें। यदि अतिथि को अधिकाधिक श्रद्धा, आदर एवं प्रेम – से भोज कराया जायगा तो स्वयं को भी उसी भाव से अन्न प्राप्त होगा। यदि । मध्यम स्तर के आदर एवं प्रेम से अतिथि को भोजन कराया जायेगा तो उसी – प्रकार से स्वयं को भी अन्न प्राप्त होगा। इसी प्रकार यदि निम्न श्रेणी के आदर – एवं प्रेम से अतिथि को भोजन कराया गया तो निश्चित ही उसी प्रकार के निम्न श्रेणी के आदर के साथ स्वयं को भी अन्न प्राप्त होगा।

तात्पर्य यह है कि जिस भाव से शातिथि को भोजन समत प्राप्त होगा। क्योंकि जो जैसा बोता है वैसा ही वह काटता है। यह विधि का विधान है। जो उक्त तथ्य को भलीभाति समझकर आत्मसात कर लेता है वह निश्चय हो अतिथि की सेना उत्तमप्रकार से करता है। अतिथि सत्कार सेना व्रत भारतीय संस्कृति का परम कल्याणकारी व्रत है जिसके अनुपालन से स्वर्ग लोक तो क्या विराट विराटेश्वर पुराण पुरुषोत्तम भगवान के अद्वितीय परम धाम को प्राप्त करना भी संभव है। महाराज रन्तिदेव ने अतिथि सेवा के द्वारा परमपद् का लाभ पाया था। शास्त्रों में वर्णित है। मातृ देवो भव! पितृ देवो भव! अतिथि देवो भव! आचार्य देवो भव! अतिथि भगवान का स्वरूप है। इसीलिए कहा भी गया है– ना जाने किस भेष में मिल जाए भगवान! मानव मात्र को अपने जीवन में इस अतिथि सेवा व्रत का अवश्य ही पालन करना चाहिए। द्वार पर आए हुए प्रत्येक जीव की अन्न–जल–पत्र पुष्पादि से सेवा करना प्राणी मात्र का कर्तव्य है।

पाण्डुनन्दन! देश–काल के अनुसार प्राप्त एवं रास्ता चलकर थके– माँदे आये हुए भूखे और अन्न चाहने वाले ब्राह्मण को अन्न– दान करना चाहिये। श्जो दूर का रास्ता तय करने के कारण दुर्बल तथा भूख–प्यास और परिश्रम से थका– माँदा हो, जिसके पैर बड़ी कठिनता से आगे बढ़ते हों तथा जो बहत पीड़ित हो रहा हो, ऐसा ब्राह्मण अन्न दाता का पता पूछता हुआ धूल से भरे पैरों से यदि घर पर आकर अन्न की याचना करे तो यत्नपूर्वक उसकी पजा करनी चाहिये, क्योंकि अतिथि स्वर्ग का सोपान होता है। नरश्रेष्ठ! उसके संतष्ट होने पर सम्पूर्ण देवता सो जाते हैं। औपी जाती होती। उपासना से उजागर नही हुई। जो किये हुए वन और स्थान को गाँजो देना, प. ब्राहाण के पैर दबाना, उसके चरण धोना, तो रातो पो लिये पर, योगेन लिये शमा और बैठने के लिये आसन देना– इनमें से एलान बना गहरव गोदान से बढ़कर है। श्जो मनुष्य लाहाणों को गैर धोने को लिये श्जल, पैर में लगाने के लिये घी, दीपक, अन्न और रहने के लिये पर देता है, कभी गालोक में नहीं जाते। ष्शत्रुदमन! राजन! लाहाण का अतिथि सत्कार तथा शातित पूर्वक उसकी सेवा करने से समस्त तैंतीसों देवताओं की रोचा हो जाती है। पहले का परिचित मनुष्य यदि घर पर आवे तो उसे अभ्यागत कहते है और अपरिचित पुरुष अतिथि कहलाता है।

द्विजों को दोनों की ही पूजा करनी चाहिये। यह पंचम वेद–पुराण की श्रुति है। श्राजेन्द्र! जो मनुष्य अतिथि के चरणों में तेल श्मलकर, उसे भोजन कराकर और पानी पिलाकर उसकी पूजा करता है, उसके द्वारा श्मेरी भी पूजा हो जाती है– इसमें संशय नहीं है। श्वह मनुष्य

तुरंत सब पापों से छुटकारा पा जाता है और मेरी कृपा से चन्द्रमा के समान उज्जवल विमान पर आरूढ़ होकर मेरे परमधाम को पधारता है। श्थका हुआ अभ्यागत जब घर पर आता है, तब उसके पीछे–पीछे समस्त देवता, पितर और अग्नि भी पदार्पण करते हैं।

यदि उस अभ्यागत द्विज की पूजा हुई तो उसके साथ उन देवता आदि की भी पजा हो जाती है और उसके निराश लौटने पर वे देवता, पितर आदि भी हताश हो जाते हैं। जिसके घर से अतिथि को निराश होकर लौटना पडता है. उसके पितर पंद्रह वर्षों तक भोजन नहीं करते। श्जो देशद काल के अनुसार घर पर आये हुए ब्राह्मण को वहां से बाहर कर देता है, वह तत्काल पतित हो जाता हैद इसमें संदेह नहीं है। श्यदि देश–काल के अनुसार अन्न की इच्छा से चाण्डाल भी अतिथि के रूप में आ जाय जो गृहस्थ पुरुष को सदा उसका सत्कार करना चाहिये। श्जो अतिथि का सत्कार नहीं, उसका ऊनी वस्त्र ओढना, अपने लिये रसोई बनवाना और भोजन करनादृ सब कुछ निश्चय ही. व्यर्थ है। ऋऋऋ श्जो प्रतिदिन सांगोपांग वेदों का स्वाध्याय करता है, किंतु अतिथि की पूजा नहीं, उस द्विज का जीवन व्यर्थ है। श्जो लोग पाक–यज्ञ, पंचमहायज्ञ तथा सोमयाग आदि के द्वारा यजन करते हैं, परंतु घर पर आये हुए अतिथि का सत्कार नहीं करते, वे यश की इच्छा से जो कुछ दान या यज्ञ करते हैं, वह सब व्यर्थ हो जाता है। अतिथि की मारी गयी आशा मनुष्य के समस्त शुभ–कर्मों का नाश कर देती है। श्इसलिये श्रद्धालु होकर देश, काल, पात्र और अपनी शक्ति का विचार करके अल्प, मध्यम अथवा महान रूप में अतिथि–सत्कार अवश्य करना चाहिये।श् जब अतिथि अपने द्वार पर आवे, तब बुद्धिमान पुरुष को चाहिये कि वह प्रसन्नचित्त होकर हंसते हुए मुख से अतिथि का स्वागत करे तथा बैठने को आसन और चरण धोने के लिये जल देकर अन्न–पान आदि के द्वारा उसकी पूजा करे। पण्डित जो कोई भी बलिवैश्वदेव के बाद आ जाय, यह स्वर्ग तक पहुँचाने वाला अतिथिहजो यज्ञ का ल पाना चाहता हो, वह भूख–प्यास और परिश्रम से दुखी तथा देश–काल के अनुसार प्राप्त हुए अतिथि को सत्कार पर्वक अन्न प्रदान करे।

"यज्ञ और श्राद्ध में अपने से श्रेष्ठ पुरुष को विधिवत भोजन करना मनष्यों का प्राण है, अन्न देने वाला प्राणदाता होता है, इसलिये कल्याण की इच्छा रखने वाले पुरुष को विशेष रूप से अन्न–दान करना चाहिये। श्अन्न प्रदान करने वाला मनुष्य सब भोगों से तृप्त होकर भली भाँति आभपणों सं सम्पन्न हुआ पूर्ण चन्द्रमा के प्रकाश से प्रकाशित विमान द्वारा देवलोक में जाता है। वहां सुन्दर स्त्रियों द्वारा उसकी सेवा की जाती है। श्वहां करोड़ वर्षों तक देवताओं के समान भोग भोगने के बाद समय पर वहाँ से गिरकर यहां महायशस्वी और वेदशास्त्रों के अर्थ और तत्त्व को जानने वाला भोग सम्पन्न ब्राह्मण होता है।

जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक अतिथि–सत्कार करता है, वह मनुष्यों में महान धनवान, श्रीमान, वेद–वेदांग का पारदर्शी, सम्पूर्ण शास्त्रों के अर्थ और तत्त्व का ज्ञाता एवं भोग सम्पन्न ब्राह्मण होता है। श्जो मनुष्य धर्मपूर्वक धन का उपार्जन करके भोजन में भेद न रखते हुए एक वर्ष तक सब का अतिथि–सत्कार करता है, उसके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। श्नरेश्वर! जो सत्यवादी जितेन्द्रिय पुरुष समय का नियम न रखकर सभी अतिथियों की श्रद्धापूर्वक सेवा करता है, जो सत्य प्रतिज्ञ है, जिसने क्रोध को जीत लिया है, जो शाखा धर्म से रहित, अधर्म से डरने वाला और धर्मात्मा है, जो माया और मत्सरता से रहित है, जो भोजन में भेद–भाव नहीं करता तथा जो नित्य पवित्र और श्रद्धा सम्पन्न रहता है, वह दिव्य विमान के द्वारा इन्द्र लोक में जाता है। वहां वह महायशस्वी होता है। अप्सराएं उसक यश का गान करती हैं। श्वह एक मन्वन्तर तक वहीं देवताओं से पूजित होता है और क्रीडा करता रहा। मनुष्य लोक में आकर भोग सम्पन्न ब्राह्मण होता है।

अन्नमयादिआनन्दपर्यन्तोपासना की समीक्षा

आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात। आनन्दाद्धयेव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति।
सैषा भार्गवी वारुणी विद्या परमे व्योमन् प्रतिष्ठिता। स य एवं वेद प्रतिष्ठिति।
अनवान नदो भवति। महान् भवति, प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन।श् महान् कीर्त्या

आनन्द ही ब्रह्म है। इस प्रकार निश्चयपूर्वक जाना क्योंकि सचमुच ही आनन्द से ही ये समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं। उत्पन्न हो आनन्द से ही जीते हैं तथा इस लोक से प्रयाण करते हुये अन्त में आनन्द में ही प्रविष्ट हो जाते हैं तथा इस लोक से प्रयाण करते हये अन्त में आनन्द में ही प्रविष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार जानने पर ब्रह्म का पूरा ज्ञान हो गया। यह भृगु की जानी हुई और वरुण के द्वारा उपदेश की हुई विद्या विशुद्ध आकाश स्वरूप पर ब्रह्म परमात्मा में प्रतिष्ठित हैं। अर्थात पूर्णतः स्थिर हैं, जो कोई भी दूसरा साधक इस प्रकार आनन्दकार स्वरूप ब्र को जानता है। वह उस विश ब्रह्म सो जानता है। वह उसे विशुद्ध आकाश स्वरूप परमानन्द में हैं। इतना ही नहीं इस लोक में लोगों के देखने में भी वह हाला और अन्न को भलीभांति पचाने की शक्ति वाला हो जाता तथा सन्तान से, पशुओं से तथा ब्रह्म तेज से सम्पन्न होकर माहान हो जाता हैं। उत्तम कीर्ति के द्वारा भी महान हो जाता व्याख्या– इस इस प्रकार शुद्ध चित्त हुये भृगुः ने प्राणादि में पूर्णतया ब्रह्म का लक्षण न देखकर धीरे–धीरे अन्तर्मुखी होकर तप रूप साधन के द्वारा ही की अपेक्षा अन्तर्मयी आनन्द को ब्रह्म जाना। ये आनन्दमय परमात्मा ही बाय पाणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय के अन्तरात्मा हैं। वे सब भी इसी के स्थूल रूप हैं। अतः ब्रह्म के आंशिक लक्षण उनमें पाये जाते हैं। ब्रह्म के सम्पूर्ण लक्षण तो आनन्द में ही हैं। क्योंकि समस्त प्राणी सष्टि के आदि में उन आनन्द स्वरूप परब्रह्म परमात्मा से ही उत्पन्न होते हैं और आनन्द पाकर ही जी रहे हैं। उन सब प्राणियों की सारी चेष्टायें उन आनन्दमय सर्वान्तर्मायी परमात्मा की अचिन्त्य शक्ति की प्रेरणा से ही होती है। प्रलय काल में समस्त प्राणियों सहित यह ब्रह्माण्ड उन्हीं में प्रविष्ट होता है। उन्हीं में विली होता है। इस प्रकार का अनुभव होते ही भृगु को परब्रह्म का यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो गया। उनकी सारी शंकाओं और जिज्ञासा का स्वतः पूर्ण रूप से समाधान हो गया।

श्रुति उस विद्या की महिमा का वर्णन करते हुये कहती है कि देव वरुण द्वारा वर्णित भृगु ऋषि द्वारा अनुभूत ब्रह्म का रहस्य बताने वाली यह विद्या आकाश स्वरूप पर ब्रह्म परमात्मा में स्थित प्रतिष्ठित है। इस प्रकार जो साधक ब्रह्म के आनन्द स्वरूप को जानता है वह भी उन विशुद्ध परमानन्द स्वरूप स्वरूप ब्रह्म को जानता है। वह उस स्थिर हो जाता हैं। इतना ही नहीं इस लोक मानता है। वह उस विशुद्ध आकाश स्वरूप परमानन्द में इतना ही नहीं इस लोक में लोगों के देखने में भी वह न वाला और अन्न को भलीभांति पचाने की शक्ति वाला हो जाता तथा सन्तान से, पशुओं से तथा ब्रह्म तेज से सम्पन्न होकर महान हो जाता हैं। उत्तम कीर्ति के द्वारा भी महान हो जाता व्याख्या– इस इस प्रकार शुद्ध चित्त हुये भृगु ने प्राणादि में पूर्णतया ब्रह्मा न देखकर धीरे–धीरे अन्तर्मुखी होकर तप रूप साधन के द्वारा ही सब की अपेक्षा अन्तर्मयी आनन्द को ब्रह्म जाना। ये आनन्दमय परमात्मा ही अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय के अन्तरात्मा हैं। वे सब भी इसी के स्थूल रूप हैं। अतः ब्रह्म के आंशिक लक्षण उनमें पाये जाते हैं। ब्रह्म के सम्पूर्ण लक्षण तो आनन्द में ही हैं। क्योंकि समस्त प्राणी सृष्टि के आदि में उन आनन्द स्वरूप परब्रह्म परमात्मा से ही उत्पन्न होते हैं और आनन्द पाकर ही जी रहे हैं। उन सब प्राणियों की सारी चेष्टायें उन आनन्दमय सर्वान्तर्मायी परमात्मा की अचिन्त्य शक्ति की प्रेरणा से ही होती है। प्रलय काल में समस्त प्राणियों सहित यह ब्रह्माण्ड उन्हीं में प्रविष्ट होता है। उन्हीं में विली होता है। इस प्रकार का अनुभव होते ही भृगु को परब्रह्म का यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो गया। । उनकी सारी शंकाओं और जिज्ञासा का स्वतः पूर्ण रूप से समाधान हो गया।

श्रुति उस विद्या की महिमा का वर्णन करते हुये कहती है कि देव वरुण द्वारा वर्णित भृगु ऋषि द्वारा अनुभूत ब्रह्म का रहस्य बताने वाली यह विद्या आकाश स्वरूप पर ब्रह्म परमात्मा में स्थित प्रतिष्ठित है। इस प्रकार जो साधक ब्रह्म के आनन्द स्वरूप को जानता है वह भी उन विशुद्ध परमानन्द स्वरूप माता पिता हो जाता है। वह पपुर अन, पाचन शक्ति, पजा, पशु, ब्रह्मवर्चस तथा महान कीर्ति से सम्पन्न होकर

महान और आवरण में पहुँचने पर आत्मा को मान मिलता है, जहाँ उसे शान्ति, सुविधा, स्थिरता, निश्चिन्तता एवं अनुकूलता की स्थिति वडी आनन्दमयी स्थिति हैं। गीता के दूसरे अध्याय में परिभाषा को गई है और समाधिस्थ के जो लक्षण कर्म, स्वभाव आनन्दमयी स्थिति में हो जाते हैं। आत्मिक पर मनायागप्वक सलग्न होने के कारण सांसारिक आवश्यकता जाती हैं। उनकी पूर्ति में इसलिए बाधा नहीं आती कि साधक अपनी शारीरिक और मानसिक स्वस्थता के द्वारा जीवनोपयोगी वस्तुओं को उचित मात्रा में आसानी से कमा सकता है। प्रकृति के परिवर्तन, विश्वव्यापी उतार–चढ़ाव, कमों की गहन गति, प्रारब्ध भोग, वस्तुओं की नश्वरता, वैभव की चञ्चल–चपलता आदि कारणों से जो उलझन भरी परिस्थितियाँ सामने आकर परेशान किया करती हैं, उन्हें देखकर वह हँस देता है। सोचता है प्रभु ने इस संसार में कैसी धूप–छाँह का, आँखमिचौनी का खेल खड़ा कर दिया है। अभी खुशी तो अभी रज्ज, अभी वैभव तो अभी निर्धनता, अभी जवानी तो अभी बुढ़ापा, अभी जन्म तो अभी – मृत्यु, अभी नमकीन तो अभी मिठाई, यह दुरंगी दुनिया कैसी विलक्षण है! दिन निकलते देर नहीं हुई कि रात की तैयारी होने लगी। रात को आए जरा सी देर ऋऋऋऋ हुई कि नवप्रभात का आयोजन होने लगा। वह तो यहाँ का आदि खेल है. ऋऋऋ बादल की छाया की तरह पल–पल में धूप–छाँह आती है। मैं इन तितलियों के पीछे कहाँ दौड़ूँ? मैं इन क्षण–क्षण पर उठने वाली लहरों को पल में रोने, पल में हँसने की बाल क्रीड़ा मैं क्यों कीं। न आनन्दमयी स्थिति में पहुँचा हुआ जीव अपने पिछले चार शरीरों–अन्नमय प्राणमय, मनोमय और विज्ञानमय कोश को भली प्रकार समझ लेता है। उनकी अपूर्णता और संसार की परिवर्तनशीलता दोनों के मिलने से ही एक विषैली गैस बन जाती है, जो जीवों को पाप–तापों के काले धुएँ से कलुपित कर देती है। यदि इन दोनों पक्षों के गुण–दोषों को समझकर उन्हें अलग–अलग व बारूद और अग्नि को इकट्ठा न होने दिया जाए तो विसोट की कोई सम्भावना – नहीं है। यह समझकर वह अपने दृष्टिकोण में दार्शनिकता. तात्विकता वास्तविकता, सूक्ष्मदर्शिता को प्रधानता देता है। तदनुसार उसे सांसारिक समस्याएँ बहुत हल्की और महत्त्वहीन मालूम पड़ती हैं। जिन बातों को लेकर साधारण मनुष्य बेतरह दुःखी रहते हैं, उन स्थितियों को वह हल्के विनोद की तरह समझकर उपेक्षा में उड़ा देता है और आत्मिक भूमिका में अपना दृढ़ स्थान बनाकर सन्तोष और शान्ति का अनुभव करता है। . गीता के दूसरे अध्याय में बताया गया है कि स्थितप्रज्ञ मनुष्य अपने भीतर की आत्म–स्थिति में रमण करता है। सुख–दुःख में समान रहता है, न प्रिय से राग करता है, न अप्रिय से द्वेष करता है। इन्द्रियों को इन्द्रियों तक ही सीमित रहने देता है, उनका प्रभाव आत्मा पर नहीं होने देता और कछुआ जैसे अपने अंगों को समेटकर अपने भीतर कर लेता है, वैसे ही वह अपनी कामनाओं और लालसाओं को संसार में न फैलाकर अपनी अन्तः भूमिका में ही समेट लेता है। जिसकी मानसिक स्थिति ऐसी होती है, उसे योगी ति ऐसी होती है, उसे योगी, ब्रहात, जीवनमुक्त या समाधिस्थ कहते हैं। आनन्दमय की साधना में आनन्दमय की साधना में आनन्द का रसास्वादन होता है। साधना के आदेशानुसार तप करके उसने पाया कि पिता जी ने जो भी ब्रह्म के लक्षण बताये थे, वह सब अन्न में हैं, क्योंकि बनाये थे, वह सब अन्न में हैं, क्योंकि अन्न के परिणाम मृत पाणी उत्पन्न होते हैं, और उससे ही जीवित रहते है और मरने स्वरूप पृथ्वी में प्रविष्टा हो जाते हैं। यह सब जानने के बाद भी वह संशयग्रस्त ही पिता के पास पहुँचा और उसने निश्चय के अनुसार सब बात बताई। पर वरुण ऋषि से अपने पुत्र की वास्तविकता छिपी नहीं रही। उन्होंने जान लिया कि भृगु को अभी तो ब्रह्म के केवल स्थूल रूप को ही जाना है। उसका तत्वतः जानना बाकी हैं। पर वरुण ने कोई टिप्पणी नहीं की। वे केवल शान्त रहे। भृगु को भी अपनी कमी का बोध हो गया था, क्योंकि उसने सोचा कि जब श्अन्न ब्रह्म हैं। इस बात में यह स्वयं ही पूर्णरूप से आश्वस्त नहीं है। इसका मतलब है कि वह अपने वास्तविक लक्ष्य तक नहीं पहुँच पाया है। अतः उसने अपने पिता वरुण से पुनः ब्रह्म का उपदेश देने के लिये निवेदन किया। तब वरुण ने कहा कि तप ब्रह्म का ही स्वरूप है। तप उनका बोध कराने में समर्थ है। अतः तू तप के द्वारा ब्रह्म के तत्व को समझने की कोशिश कर। – मनुष्य को सर्वप्रथम तो यह व्रत लेना चाहिए कि कभी भी किसी भी परिस्थिति में अन्न का भक्षण करके ही प्राणों में बल पाता है। शरीर में जीवन शक्ति का संचार होता है। शरीर प्राण के आश्रय में स्थित है और प्राण शरीर आश्रय में अधिष्ठित है। इस प्रकार अन्न में ही अन्न प्रतिष्ठित है। जो भी साधक इस रहस्य हो जान लेता है। वह उसी में प्रतिष्ठित हो जाता है। वह साधक सलोना चाहिये नि निजी प्रकार अन्न की अन्न, पाचन, शक्ति, प्रजा, महाराज राणा गाहानी जाता है।

सर्वप्रथम यह व्रत लेना चाहिये कि कि अवहेलना नहीं करेंगे। अर्थात् आता श्उलापता, दुपयोग को इसके उपरान्त अन्न के तत्व को समझाना चाहिए जिला ही अब है और ज्योति अर्थात तेज ही इस जल रूप को पक्षण करने वाला है। शरीर में रहने वाली जठराग्नि शरीर में जाने वाले जलीय तत्वों का शोषण करती है। जल से ज्योति प्रतिष्ठित है। इसी प्रकार तेज में जल स्थित है। क्योंकि सूर्य की प्रखर किरणों में स्थित जल ही वर्षा रूप में प्रत्यक्ष होता है। जल एवं तेज अन्योन्याश्रित (एक दूसरे के आश्रित) होने के कारण समस्त अन्न रूप खाद्य पदार्थों के कारण है। अतः ये ही अनेक रूप में परिणत होते हैं। इस प्रकार अन्न में ही अन्न प्रतिष्ठित हैं।

जो साधक उक्त रहस्य को जानता है। वह अन्न रूपी ब्रह्म में अधिष्ठित होता है। वह अन्नादि साधन, पाचन शक्ति, सन्तान, पशु, ब्रह्म, तेज और कीर्ति से समृद्ध होकर महान हो जाता है। जल में ज्योति (तेजस) की अनुभूति सहज ही की जा सकती है। मोती या किसी चमकदार वस्तु की चमक (तेजस्विता) घटती है तो कहा जाता हैं कि उसका पानी उतर गया या श्आबश कम हो गया। अरवी भाषा में पानी को ही कहते हैं। जो मनुष्य अन्नादि से समृद्ध होना चाहता है, उसको सर्वप्रथम यह व्रत लेना चाहिए कि ष्मैं अन्न का खूब बढ़ाऊगाँश इसके बाद अन्न के उस तत्व को समझना चाहिए कि पृथ्वी ही अन्न है क्योंकि जितने भी अन्न हैं वे सब न और पृथ्वी को अपने में विलीन कर लेने वाला काश ही अन्नाद अर्थात् अन्न का भोवता है। आकाश चूंकि पथ्वी में स्थिर हैं और आकाश में पृथ्वी स्थिर है। ये पृथ्वी से ही उत्पन्न होते हैं और पृथ्वी को अपने इसका आधार भूत आकाश ही अन्नाद अर्थात् अन का सर्वव्यापी है। अतः वह पृथ्वी में स्थिर हैं और आप दोनों ही एक दूसरे के आधार होने के कारण अन्न स्वा आकाश पहला तत्व है और पृथ्वी अन्तिम तत्व है। बीना वायु, अग्नि इन्हीं के अन्तर्गत है। समस्त और के अन्तर्गत है। समस्त भोग्य–पदार्थ अन्न इन पाँचों तत्वों के हा अतः ये ही अन्न के रूप में स्थित हैं। अतरू अन्न ही अन्न में प्रविष्ट जो विद्वान उक्त रहस्य को भलीभाँति जानता है। वह उसी अन्न रूप ब्रह्म में प्रतिष्ठित होता है। वह अन्नादि पदार्थ, पाचन शक्ति, सन्तान, पशु और ब्रह्म तेज और कीर्ति से समृद्ध होकर महान हो जाता हैं। .

यह अंतर हृदय के भीतर आकाश है, हृदय श्वेत कमल के आकारवाला मांसपिण्ड है, जो प्राणों का आश्रय अनेकों नाड़ियों के छिद्रवाला तथा ऊपर का नाल और नीचे का मुखवाला है पशु का आलभन (वध) किये जाने पर स्पष्टता उपलब्ध होता है। उसके यह मनोमय अमृत स्वरूप हिरण्मय पुरूष है। इस चारों व्याहृतियों को चार प्रकार से प्रयुक्त उपासना करने की रीति को बताकर उसे समझकर उपासना करने का ल बताया गया है। चारों व्याहृतियों की उपासना का भेद समझकर कोई जान लेता है समझकर उसके – अनुसार परब्रह्म परमात्मा की उपासना करने लगता है, वह ब्रह्म को जान लेता है और समस्तदेव उसको भेंट सम्पर्ण करते हैं। जिस किसी भी देवता की इन व्याहृतियों के द्वारा उपासना की जाय उसमें इस बात को भुलना नहीं चाहिए।

यह सर्वरूप परमेश्वर ही उपासना है सना अन्य देवों की उपासना भी उन्हीं की उपासना इस विराट् शरीर को प्रकाशित करनेवाले दस उपासना का लक्ष्य कराया गया है। समापन रही उपासना है सन मेवानीनोकोने से साना भी उन्हीं की उपासना है। सामाणसे प्रकाशित करनेवाले इसको आमारूप परमेश्वर काही कराया गया है। सम्पूर्ण वेदों में चाणत सगरत जान माता सोलर से पकट और उन्हीं से व्याप्त है। उन परमेश्वर सानो में वर्णन है, इनकी महिमा भी अपरंपार है। श्लोक और परलोक उन्नति के उपाय परमात्मा को विधि भी साथ–साथ बतलायी गयी है। यह बड़ा ही सुन्दर से है। इसमें बहुत प्रकार से विधि बतलायी गयी है हमें अपने लिए जिस पर अत्यधिक आवश्यकता प्रतीत होती है उस अंश के अनुसार उस काम को करने का अनुष्ठान प्रारम्भ कर देना चाहिए।

उस आत्मा शब्द वाक्य ब्रह्म से शब्दगुण वाला और समस्त मूर्त पदार्थों को अवकाश देने वाला उत्पन्न हुआ है। आकाश से स्पर्श गुण और पूर्ववर्ती शब्द गुणवाला वायु उत्पन्न हुआ। वायु से अपने स्व्यं के गुणरूप और पूर्ववर्ती वायु और आकाश के गुणों से युक्त अग्नि उत्पन्न

हुई। अग्नि से अपन स्वयं के गुण रस और पूर्ववर्ती चार गुणों से युक्त जल उत्पन्न हुआ है। जल से अपने गुण गन्ध और पूर्ववर्ती चार गुणों से युक्त पृथ्वी उत्पन हुई है। इस प्रकार परब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति के लिये आवश्यक बुद्धिबल और शारीरिक बल की प्राप्ति के उद्देश्य से परमेश्वर के द्वारा ओंकार मन्त्र द्वारा प्रार्थना करने का उपाय बतलाया गया है। श्री और बुद्धि की कामनाओं के लिये जप और होम सम्बन्धी वर ही उपासना है सब देवता उन्हीं के अंग होने से भी उन्हीं की उपासना है। यहाँ सूर्य के उपलक्षण से कि यह सर्वरूप परमेश्वर ही उपासना है सब देना अन्य देवों की उपासना भी उन्हीं की उपासना इस विराट् शरीर को प्रकाशित करनेवाले इसके लि इसक आत्मारूप परमेश्वर की ही कराया गया है। सम्पूर्ण वेदों में वर्णित समस्त ज्ञान परब्रह्म उपासना का लक्ष्य कराया गया है। सम्पूर्ण वेदों में ही उन्हीं से व्याप्त है। उन परमेश्वर के तत्त्व का इन वेदों में वर्णन है, इनकी महिमा भी अपरंपार है। लोक और परलोक उन्नति के उपाय परमात्मा की प्रार्थना और हवन की साथ–साथ बतलायी गयी है। यह बड़ा ही सुन्दर रोचक और श्रेयस्कर है। इसमें बहुत प्रकार से विधि बतलायी गयी है हमें अपने लाय क अत्यधिक आवश्यकता प्रतीत होती है उस अंश के अनुसार उस काम क का अनुष्ठान प्रारम्भ कर देना चाहिए।

– उस आत्मा शब्द वाक्य ब्रह्म से शब्दगुण वाला और समस्त मूर्त पदार्थों को अवकाश देने वाला उत्पन्न हुआ है। आकाश से स्पर्श गुण और पूर्ववर्ती शब्द गुणवाला वायु उत्पन्न हुआ। वायु से अपने स्व्यं के गुणरूप और पूर्ववर्ती – वायु और आकाश के गुणों से युक्त अग्नि उत्पन्न हुई। अग्नि से अपन स्वयं के गुण रस और पूर्ववर्ती चार गुणों से युक्त जल उत्पन्न हुआ है। जल से अपने गुण गन्ध और पूर्ववर्ती चार गुणों से युक्त पृथ्वी उत्पन्न हुई है। इस प्रकार परब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति के लिये आवश्यक बुद्धिबल और शारीरिक बल की प्राप्ति के उद्देश्य से परमेश्वर के द्वारा ओंकार मन्त्र द्वारा प्रार्थना करने का उपाय बतलाया गया है। श्री और बुद्धि की कामनाओं के लिये जप और होम सम्बन्धी श्मन्त्र का उल्लेख मिति है। लीीपि और प्रकार हवन करना चाहिए इसका निशि बतायो । यही जिनका हा प्रयोजनकनिका कारण यो स्थिति हो जाने से कार्य प्रति असाव है।

निवृत्ति के लिये ब्रहाविद्या है। जो लोग वि ंउलं अभाव होने पर स्वरूप में स्थिति हो जाने से आत्मदर्शन की कामना पूर्ण होने पर ही पूर्णकागती ब्रह्म है। कामना ही कर्म की कारण हो सकता भाव की प्रतियोगी ही अभाव कहलाता है जिस प्रकार पर भी घट–पट आदि विशेषणों से भिन्नसमान घटणाव. पवार नियोजित किया जाता है, अभाव निर्विशेप होने पर भी क्रिया और गुण के योग से द्रव्यादि के समान अभाव विशेषण के सहित विकल्पित होता है। उपादान कारण की निवृति होने पर आत्म स्वरूप में स्थिति हो जाना श्मोक्ष है तथा आत्मा ही ब्रहा है और उसके ज्ञानसे आत्मा की निवृति होती है।

ब्रह्म के साक्षात् उपलब्धि स्थान हृदयाकाश का स्थान बतलाया गया है, जैसे कि विष्णु के लिए शालिग्राम। उसमें उपासना किए जाने पर है वह मनोमयत्वादि धर्म विशिष्ट ब्रह्म हथेली पर रखे हुए आँवले के समान साक्षात् उपलब्ध होता है। वे मनोमय ब्रह्म सबके अन्तर्यामी पुरूष कहाँ है, उनकी उपलब्धि कहाँ होती है, यह हृदय के भीतर अगुष्ठान्न परिमाण वाला आकाश है उसीमें ये विशुद्ध प्रकाश स्वरूप अविनाशी मनोमय अन्तर्यामी परम पुरूप परमेश्वर विराजमान है, वही उनका साक्षात्कार हो जाता है, उन्हें पाने के लिए दूसरी जगह नहीं जाना पड़ता। यह बात वहाँ भी कहा गया है कि ब्रह्मवेत्ता जानने नायता हाली में आते हैं तब वह सर्वप्रथम ज्योतिष के अधिकार में आता है। वह बहो लोक में प्रति है वह स्वराद बन जाता है। उस पर प्रकृति का अधिक प्रकृति का अधिष्ठाता बन जाता, क्योंकि वह पानी समुदाय के स्वामी परमात्मा को प्राप्त कर लेता र वह ब्रहालोक में प्रतिष्ठित पहा पर कैसा हो जाता या। उस पर प्रकृति का अधिकार नहीं रहता वह स्वयं वा बन जाता, क्योंकि वह मानके अर्थात् समस्त अन्तरूकरण परमात्मा को प्राप्त कर लेता है, इसलिये वह वाणी चक्षु, इन्द्रयों और उनके देवताओं का तथा विज्ञान स्वरूप बुद्धि का भी स्वामी हो जाता है। अर्थात् ये सब उसके अधीन हो जाते हैं।६ – ब्रह्म कैसे हैं, उनका चिन्तन और ध्यान किस प्रकार करना चाहिए – वे बहा आकाश के सदृश निराकार, सर्वव्यापी और अतिशय र एकमात्र सत्तारूप है, समस्त इन्द्रियों का प्राणों का विश्राम देने वाला र परमानन्द देनेवाला, अखण्ड शान्ति के भण्डार देने वाले और सर्वथा सम्पन्न अविनाशी हैं। परम विश्वास के साथ साधक को उनकी प्राप्ति के लिये उनके चिंतन और ध्यान में तत्परता के साथ लग जाना चाहिए। यह भाव श्रुति की वाणी में ऋषि अपने शिष्य से कहते हैं– हे प्राचीन योग्य। तू उन ब्रह्म के स्वरूप को मानकर उनकी उपासनाकर। पृथ्वी, अन्तरिक्ष, स्वर्ग, पूर्व और पश्चिम आदि दिशाएँ नैऋत्य आदि अवतार दिशाएँ आधि भौतिक पंक्ति है। अग्नि वायु सूर्य चन्द्रमा और नक्षत्र – ज्योतियों की आधि भौतिक पंक्ति हैं। तथा जल औषधियाँ, वनस्पति, आकाश, और पाँचभौतिक स्थूल शरीर के भीतर सब मिलकर आधि भौतिक समूहों का पि ंक्त है। आध्यात्मिक शरीर के भीतर रहनेवाला पंक्ति है– इसमें प्राण, – व्यान, अपान, उदान और समान यह प्राणों की पंडिक्त है। ना जीवन कैसे चलाना चाहिए यह बात समझाने के गृहस्थाश्रम में अपना जीवन कैसे लिए शिक्षावल्ली अनुवाक में इस बात का जो को वेद का ज्ञान उपनयन संस्कार होने के गृहस्थाश्रम में प्रवेशकर के गृहस्थ धर्म का पालन का पूर्ण अध्ययन अर्जित कराकर आचार्य अपने विद्यार्थी को गृहस्थ धर्म के कर्त्तव्य का पालन करने पर अनवाक में इस बात का उल्लेख मिलता है। आचार्य शिष्य अपनयन संस्कार होने के बाद समावर्तन संस्कार के समय कर के गृहस्थ धर्म का पालन करने की शिक्षा देते थे– वेद अध्ययन अर्जित कराकर आचार्य अपने आश्रम में रहनेवाले ब्रह्मचारी पर बोलों. अपने वर्ण आश्रम के अनुकूल शास्त्र सम्मत धर्म का अनुष्ठान

–

करना, धर्म आचरण करो, स्वाध्याय से वेदों के अभ्यास. संध्या इत्यादि नित्यकर्मो में कभी भी प्रमाद न करना, आचार्य के लिए किया में उनकी रूचि के अनुकूल थोड़ा–सा धन लाकर प्रेम पूर्वक देना, रि उनकी आज्ञा से गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर के स्वधर्म का पालन करते हुए गुहस्थ धर्म को सुरक्षित रखना। तुम अपने कर्म से अथवा सत्य से पीछे नहीं हटोगे और न अपने धर्म पालन में कभी धर्म अवहेलना करोगे। धन सम्पति को बढ़ाने वाले लौकिक उन्नति के साधनों के प्रति उदासीन नहीं होना चाहिए। अग्निहोत्र और यज्ञादि कर्म के अनुष्ठानरूप देवकार्य तथा श्राद्धतर्पण आदि पितृ कार्यों के सम्पादन में भी अवहेलना पूर्वक प्रमाद नहीं करना चाहिए। माता–पिता आचार्य, अतिथि– इन सबको देव बुद्धि व देवतुल्य समझाने वाला होना चाहिए। इनकी आज्ञा का पालन, नमस्कार और सेवा करते रहना इन्हें सदा विनयपूर्ण व्यवहार से प्रसन्न रखना चाहिए। संसार में जो निषिद्ध कर्म है उनका कभी भूलवश आचरण नहीं करना चाहिए। हमारे अपने गुरूजनों के आचार व्यवहार में जो उत्तम कोटि का शास्त्र ज्ञान एवं शिष्ट परूषों के द्वारा आचरण हैं उन्हीं काजाण करना चाहिए। जा काई श्रेष्ठ गुरुजन ब्राह्मण पर पधारे

आसन आदि प्रदान करके सब विधि पूर्वक से सम्मान तथा अनुकूल हमें आचरण करना चाहिए। जो कोई उनको पाद्य अर्घ्य आसन आदि प्रदान करके सबकी यथा योग्य सेवा करनी चाहिये। अपने शक्ति के अमर उदारता पूर्वक तत्पर रहना चाहिये। जो कुछ भी तत्पर रहना चाहिये। जो कुछ भी दिया जाय श्रद्धापूर्वक दिया नादान दिया हुआ कर्म भगवान का अवतार समझा जाता है। जो कंछ दिया जाय वह विवेकपूर्ण उसके परिणाम को समझकर समझकर देना चाहिये। इस प्रकार दिया हुआ दान ही भगवान की प्रीती का का साधन हो सकता है। यही अक्षय फल देनेवाला होता है। यदि हमें कर्तव्य के निर्णय लेने में किसी प्रकार की दुविधा उत्पन्न हो जाय। अपनी बुद्धि से किसी एक निर्णय पर पहुँचना कठिन हो गया ऐसी स्थिति में वहाँ जो कोई उत्तम विचार रखने वाले, कुषल सत्कर्म और सदाचार में तत्परता पूर्वक लगे हुए, सबके साथ प्रेम पूर्वक व्यवहार रखने वाले एक मात्र धर्म की वात रखने वाले, इधर–से–उधर नहीं करने वाले विद्वान् ब्राह्मण हो, वे जिस प्रकार से व्यवहार करे उसी प्रकार से हमें भी आचरण करना चाहिये। उनका व्यवहार ही इस विषय में प्रमाण है।

इस अध्ययन और अध्यापन करने वालों को अध्ययन–अध्यापन के साथ–साथ शास्त्रों के बताये हुए मार्ग पर स्वयं चलना चाहिये। अध्ययन अध्यापन दोनों बहुत ही उपयोगी हैं, शास्त्रों के अध्ययन से ही मनुष्य अपने कर्त्तव्य तथा उसकी विधि और फल का ज्ञान होता है, अतरू उसके साथ–साथ यथा योग्य सदाचार का पालन सत्य भाषण, स्व धर्म पालन क लिय बड़ स बड़ा कष्ट सहना इन्द्रियों को वश में

रखना, मन को वश में रखना, अग्निहोत्र पदीप्त करना, कर हवन करना, अतिथि की यथा योग्य मन्दर मनुष्योचित लौकिक व्यवहार करना, शास्त्र विधि करना और ऋतुकाल में नियमित रूप से स्त्री–सहवास । लिये अग्नि को प्रदीप्त करना, रिडला सेवा करना, सबके साथ सुन्दर मनुष्योचित लौकिक के अनुसार गर्भाधान करना और ऋतुकाल में करना तथा कुटुम्ब को बढ़ाने का उपाय करना , अनुष्ठान करते रहना चाहिये। इन सब कर्ता को बढ़ाने का उपाय करना, इस प्रकार इन श्रेष्ठ कर्मों का हना चाहिये। इन सब कर्तव्यों का समुचित पालन और भी व्याक उनके आदर्श का अनुकरण करते हैं। जो कुछ कर्म किया जाय वह पठन–पाठन अनकल हाना चाहियो कितन विघ्न क्यों न उपस्थित हो . . रुप तप में सदा एकाग्रचित रहना चाहिये और क्रिया में सरकार भाषण पर विशेष ध्यान रहना चाहिए। उनके में प्रवाह रूप में अनादि काल से चले आते हुए इस जन्म मृत्यु रुप संसार रूप का उच्छेद करनेवाला हूँ। मेरी कीर्ति पर्वत शिखर के समान उन्नत एवं विशाल है अन्नोत्पादक शक्ति से युक्त सूर्य में जैसे उत्तम अमृत का निवास है, उसी प्रकार में भी शुद्ध अमृतमय हूँ। मैं प्रकाश युक्त अन्न का भण्डार हूँ, परमानन्दरूप अग्नि में निमग्न और श्रेष्ठ धारणा युक्त बुद्धि से सम्पन्न हूँ। यह त्रिशंकु ऋषि का वेदानुवचन है। ज्ञान प्राप्ति के बाद व्यक्त किया हुआ आत्मा का उद्धार है। जप विद्या की उत्पत्ति के लिये माना जाता है। धर्म का उपन्यास करने के अन्नतर वेदानु वचन का पाठ करने से यह जाना जाता है कि श्रौत और स्मार्त नित्य कर्मों में लगे हए परब्रह्म के निष्काम जिज्ञासु के प्रति आत्मा आदि से सम्बन्धित आश मन मार्जित कराकर भाचार्य अपने आश्रम में रहनेवाले चेन का पूर्ण आमामान बानित कराकर भाचार को शहरमा भर्मक कर्तव्य का पालन करने की शिक्षा देते हैं, जिनका उल्लेख सपर्यत बातों पर ध्यान आकृष्ट कराने की की जाज्ञा है। शास्त्रों का निचोड़ है। यही गुरु एवं माता–पिता को अपने शिष्यों और संतानों के प्रति उपदेश है यही संपूर्ण वेदों का रहस्य है, अशासन भी यही है। ईश्वर की आज्ञा तथा परम्परागत उपदेश का नाम असायन। इसी प्रकार से सभी मनुष्यों कर्तव्य और सदाचार का पालन करना चाहिए।

संदर्भ सूची :

- तैत्तिरीयोपनिषद्, शंकरभाष्य सहिता, गीता प्रेस, गोरखपुर, 2000, पृ. 204
- श्वेताश्वतरोपनिषद्, शांकरभाष्य सहित, गीताप्रेस, गोरापुर, सम्बत् 2052
- श्वेताश्वतरोनिपद, शर्मा तुलसीराम, टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, 1976
- कठोपनिषद, शर्मा विजेन्द्र कुमार, साहित्य मंडार, समाप बाजार, मेण्ट, 1984
- कठोपनिषद, शांकरभाष्य सहित, गीताप्रेस, गोरखपुर, सम्चत् 2050
- कठोपनिषद्, शास्त्री राजाराम, शाश्वत संस्कृति परियद, नई दिल्ली, 1975 ।